Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 7.384
Volume - 8, Issue - 8, August - 2025

DOIs:10.2018/SS/202508004 --:-- Research Paper / Article / Review

भारतीय कला के क्रमिक विकास : पंचाल क्षेत्र की स्थानीय मुद्राएँ

रवि नंदन कुमार
शोधार्थी, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार), भारत
Email - ravinandankumar667@gmail.com

शोध प्रस्तुति के सारांश : कलाओं में ललित कला के अध्ययन पुरातत्व के साथ-साथ उनके उत्खनन द्वारा प्राप्त कला सामग्रियों के संग्रह और प्रदर्शन भारतीय संस्कृति का एक मानक व्यवस्था है । इन्हीं कलाओं के विश्लेष्णात्मक अध्ययन हमारे देश कि तरक्की और विकास से पर्दा उठाती हैं । प्रस्तुत शोध पत्र में हम कला के वस्तुओं में मुद्रा कला (सिक्कों) के बारे में अध्ययन करेंगे कि मुद्राओं का प्रचलन में स्थानीय सम्बन्ध क्या था ? देश में सांस्कृतिक विकास के कारण, धर्म और विश्वास का विस्तारण कैसे हुआ ? मुद्रा कला (मुद्राशास्त्र) की अवधारणा तथा उनपर चित्रित आकृतियों का तात्पर्य के वास्तविक अभिप्राय को जानना अति आवश्यक है । स्थानीय मुद्राओं के आलोचनात्मक अध्ययन से हमें विभिन्न मुद्राओं के क्रमिक विकास के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकेंगे । विशेष कर इस शोध में पंचाल क्षेत्र की स्थानीय मुद्राओं का अवलोकन एवं उनके कलात्मक पृष्ठभूमि के साथ भारत के विभिन्न राजवंशों के धार्मिक विचारधाराओं का भी इतिहास जान पाएंगे ।

शब्द कुंजी : मुद्रा, कला, सिक्का, आहत, धातु, उत्किर्ण, पुरातत्व, कुषाण काल ।

1. परिचय :

मौर्य साम्राज्य के विघटन के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में स्थानीयता की प्रवृत्ति सहसा बलवती हो उठती है। क्षेत्रीय पहचान वाले जनपदीय राज्य तथा साजात्य को महत्व देने वाले गणराज्य एक बार पुनः उत्तर भारत के राजनीतिक मानचित्र पर उभर जाते हैं । द्वितीय शती ई. पूर्व से लेकर तीसरी शती ई. तक के विस्तृत कालखण्ड में अनेक जनपदीय राज्यों एवं गणराज्य का अस्तित्व दिखाई देता है। ये छोटे-छोटे राज्य पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक फैले हुए थे। इनके अन्तर्गत गणराज्यों में औदुम्बर, कुणिन्द, मालव, यौधेय, आर्जुनायन आदि जहाँ उल्लेखनीय हैं, वहीं पाञ्चाल, मथुरा, कौशाम्बी तथा अयोध्या के जनपदीय राज्य भी मुख्य रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इन राज्यों के अस्तित्व का ज्ञान हमें मुख्यतः इनकी मुद्राओं से प्राप्त होता है। इनमें गणों की मुद्राओं की पहचान तो अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि प्रायः उन पर गणों के नामों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है तथा उनके विशिष्ट प्रतीकों का भी अंकन मिलता है किन्तु

जनपदीय मुद्राओं की पहचान करना प्रायः कठिन हो जाता है, क्योंकि अलग-अलग जनपदों में शासन करने वाले राजाओं के नामों में कभी-कभी समानता दिखायी देती है। इसी प्रकार अभिलेखविहीन मुद्राओं के पहचान में भी मुद्राशास्त्रियों को कठिनाई का अनुभव होता है क्योंकि उन पर अंकित प्रतीकों के आधार पर ही उनकी पहचान का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु कुछ ऐसे प्रतीक भी हैं, जो एकाधिक स्थानीय राजवंशों की मुद्राओं पर प्राप्त होते हैं। तथापि अत्यन्त श्रम एवं सावधानीपूर्वक मुद्राओं से जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे अधिकांशतः प्रमाणिक हैं। इनके अध्ययन से जहाँ स्थानीय राजवंशों के शासकों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है वहीं क्षेत्र विशेष में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मौर्योत्तर काल में कभी-कभी नगर के व्यापारिक संगठनों द्वारा भी मुद्राओं का प्रवर्तन किया गया। यह बात 'नेगम', 'गधिकानम' जैसे लेखों से युक्त मुद्राओं से प्रमाणित होती है। मौर्योत्तरकालीन गणराज्यों एवं जनपदों की मुद्राओं समकालीन जीवन के विभिन्न पक्ष उद्घाटित होते हैं, ऐसी स्थिति में हम यहाँ कतिपय महत्वपूर्ण गणराज्यों एवं जनपदीय राज्यों की मुद्राओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

2. पंचाल क्षेत्र की स्थानीय मुद्राओं कि विवेचना

उत्तर प्रदेश के आधुनिक रुहेलखण्ड का क्षेत्र प्राचीन पंचाल राज्य का निर्माण करता था। राजधानी अहिच्छत्र की पहचान बरेली जिले के रामनगर से की गयी है। प्रथम शताब्दी ई. पूर्व से पहली श. ई. तक इस राज्य की मुद्राएँ, रामनगर, आँवला और बदायूँ से बहुत बड़ी "मात्रा में उपलब्ध हुयी हैं। अलेक्जेंडर कनिंघम ने सर्वप्रथम अहिच्छत्रा और बदायूँ आदि स्थानों से ये मुद्राएँ प्राप्त की थीं। उपर्युक्त सभी स्थानों से प्राप्त मुद्राओं में अद्भुत साम्य है।

पाश्चात्य पुरातात्विक विशेषज्ञ कनिंघम ने इन मुद्राओं को पंचाल की मुद्रा कहा है। उनका कहना था कि ये मुद्राएँ पंचाल की सीमा के बाहर बहुत कम मिलती हैं। यद्यपि ये मुद्राएँ बस्ती, गोरखपुर, कौशाम्बी, वाराणसी एवं कुम्हरार जैसे दूरस्थ क्षेत्रों से भी प्राप्त हुयी हैं तथापि इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। एलन ने पंचाल के 13 शासकों की मुद्राओं को प्रकाशित किया था ।[1] किन्तु अभी तक लगभग दो दर्जन शासकों की मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें वंगपाल या विश्वपाल, यज्ञपाल, दामगुप्त, रुद्रगुप्त, जयगुप्त, रुद्रघोष, भद्रघोष, वसुसेन, युगसेन, सूर्य मित्र, फाल्गनिमित्र, भानुमित्र, भूमिमित्र, धुवमित्र, अग्निमित्र, विष्णुमित्र, जयमित्र, इन्द्रमित्र, प्रजापतिमित्र, वरुणमित्र, अणुमित्र, शिवनन्दी, श्री नन्दी तथा अच्युत नामांकित मुद्रायें उल्लेखनीय हैं।

पांचाल की ये मुद्राएँ सामान्यतः वृत्ताकार है। अपवादस्वरूप वर्गाकार मुद्रा भी मिली है। अधिकांश मुद्राएँ ताम्र की है। कतिपय पीतल से मिर्मित मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं। विष्णुमित्र की एक मुद्रा रजतमिश्रित धातु की है। डॉ. ए. एस. अल्तेकर का मानना है कि यह मुद्रा सम्भवतः जाली है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पंचाल क्षेत्र में कतिपय शासकों ने रजत मिश्रित धातु की मुद्राएँ भी प्रवर्तित की थीं। ध्यातव्य है कि इन्द्रमित्र की भी कतिपय मुद्राएँ रजत मिश्रित धातु की हैं। कुछ मुद्राएँ ऐसी भी मिली हैं। जिन पर रजत की कलई चढ़ाई गयी है।

3. पंचाल क्षेत्र की मुद्राओं के कलात्मक उत्कीर्ण

इन मुद्राओं के पुरोभाग पर सामान्यत: तीन चिन्ह मिलते हैं। इन चिन्हों के नीचे शासक का नाम ब्राह्मी लिपि में अंकित है। किंचित मुद्राओं पर इन तीनों प्रतीकों में एक या दो चिन्ह पृष्ठभाग पर भी प्राप्त होते हैं।

इन मुद्राओं का पृष्ठभाग अत्यन्त रोचक है। पुरोभाग पर जिस शासक का नाम अंकित है पृष्ठभाग पर उसी नाम वाले अथवा उस नाम से साम्य रखने वाले देवता का अंकन है। कहीं-कहीं देवता का केवल प्रतीक ही अंकित किया गया है। उदाहरणार्थ इन्द्रमित्र और जयमित्र की मुद्राओं पर इन्द्र, विष्णुमित्र की मुद्रा पर विष्णु, फाल्गुनि मित्र की मुद्रा पर फाल्गुनी देवता तथा भद्रमित्र की मुद्राओं पर भद्रा नामक देवी का अंकन किया गया है। अग्निमित्र एवं भूमित्र की मुद्रा पर अग्नि, सूर्यमित्र तथा भानुमित्र की मुद्रा पर सूर्य का अंकन है। जयमित्र, इन्द्रमित्र और प्रजापतिमित्र की मुद्राओं पर देवाकृति देवालय के अन्दर दिखायी गयी प्रतीत होती है। वंगपाल, इन्द्रघोष, दमगुप्त, यज्ञपाल, रुद्रगुप्त, वसुसेन, उग्रसेन, अजमित्र की मुद्राओं पर देवाकृति नहीं है। अपितु देवताओं के प्रतीक का अंकन किया गया है। जैसे कि रुद्रगुप्त की मुद्रा पर तारा अथवा त्रिशूल का अंकन प्राप्त होता है। पांचाल मुद्राओं की यह एक अद्भुत विशेषता है।

पृष्ठ भाग पर अंकित देवताओं के महत्व को उद्घाटित करते हुए एलन महोदय ने कहा कि प्रत्येक शासक ने अपने संरक्षक देवता अथवा कुलदेवता का अंकन किया है। किन्तु कुल देवता प्रत्येक शासक के काल में परिवर्तित नहीं होता। अतः यहाँ मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि प्रत्येक शासक ने अपने नाम से तादात्म्य रखने वाले देवता का अंकन कराया था। यह भी सम्भव है कि पृष्ठ भाग पर देवताओं के अंकन के पीछे राजा के देवत्व की भावना अथवा उसके प्रति दैवी समर्थन को प्रदर्शित करने की भावना विद्यमान रही हो ।[2]

4. स्थानीय मुद्राओं पर विद्वानों के मत

पांचाल के स्थानीय शासकों के अभिज्ञान का मुख्य आधार उनकी मुद्राएँ है। साहित्य और अभिलेखों में इनका उल्लेख नगण्य है। अतः इनकी वंश परम्परा एवं कालक्रम का निर्धारण एक कठिन समस्या है। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल पंचाल, मथुरा आदि के शासकों को शुंग वंशीय मानते हैं। कतिपय विद्वानों ने मुद्राओं से ज्ञात अग्निमित्र की पहचान पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र से की है। एम. बी. एल. दर्भ ने वसुसेन की पहचान पुष्यमित्र शुंग के पौत्र वसुमित्र से की है। अजित घोष' ने ज्येष्ठ मित्र की पहचान पौराणिक सूची के सुजेष्ठ से की है।[3] इसी प्रकार भद्रघोष की पहचान घोष के साथ तथा भूमिमित्र की पहचान कण्ववंशी शासक भूमिमित्र के साथ स्थापित करने का प्रयत्न भी हुआ है। मुद्राओं के तुलनात्मक अध्ययन से पंचाल के शासकों का कौशाम्बी के राजवंश से भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। उल्लेखनीय है कि दोनों राजवंशों के शासकों के नामों में पर्याप्त समानता है। कतिपय नामान्त भी समतुल्य हैं। मुद्राओं का आकार भी प्रायः एक जैसा है। कतिपय प्रतीक यथा इन्द्रयष्टि, नन्दिपद, प्राकार में वृक्ष आदि दोनों राजवंशों की मुद्राओं पर समान रूप से पाये जाते हैं। कौशाम्बी की कतिपय अलिखित मुद्राओं पर दोनों ओर (पुरोभाग एवं पृष्ठभाग) एक-एक पंचाल चिन्ह

अंकित हैं। कौशाम्बी की कतिपय मुद्राएँ पंचाल चिन्हों से पुनरांकित है। इस आधार पर कतिपय इतिहासकारों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि पंचाल के शासकों ने कौशाम्बी पर विजय प्राप्त की थी। किन्तु इस मत को पुष्ट करने के लिए उपर्युक्त साक्ष्य पर्याप्त नहीं हैं। ध्यातव्य है कि पभोसा से प्राप्त अषाढ़सेन के अभिलेख से ज्ञात होता है कि अहिच्छत्र के शासक वंगपाल का पौत्र अषाढ़सेन कौशाम्बी नरेश वृहस्पतिमित्र का मामा था। अतः इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि दोनों राजवंशों में वैवाहिक सम्बन्ध थे। कदाचित वैवाहिक सम्बन्ध से उत्पन्न घनिष्ठता ही कौशाम्बी की मुद्राओं पर पंचाल मुद्राओं के प्रभाव का कारण रही हो। इस प्रकार का प्रभाव इतिहास में अज्ञात नहीं हैं। पूना ताम्र पत्र पर गुप्त ब्राह्मी का प्रभाव देखा जा सकता है।

पंचाल की मुद्राओं से ज्ञात शासकों का काल एवं उनका कालक्रम निर्धारण भी निर्विवादित नहीं है। एलन महोदय ने इनका काल 200 ई. पू. से 100 ई. के मध्य निर्धारित किया है जबकि दिनेश चन्द्र सरकार द्वितीय शताब्दी ई. पू. से द्वितीय श. ई. के बीच पंचाल शासकों का काल निर्धारित करते हैं। के. डी. वाजपेयी, मित्र नामान्त शासकों को पुष्यमित्र के बाद अर्थात् 140 ई. पू. से प्रथम शताब्दी ई. पू. के अन्त अथवा इसके कुछ बाद तक स्वीकार करते हैं। वस्तुतः इस समस्या का समाधान सरल नहीं है। मुख्य समस्या तो यही है कि पंचाल राजवंश का शासन कब प्रारम्भ हुआ। प्रश्न यह है कि इनका राज्यकाल मौर्यवंश के पतन के ठीक बाद प्रारम्भ हुआ अथवा शुंग साम्राज्य के भग्नावशेषों पर। साथ ही यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या गंगा घाटी में कुषाणों के साम्राज्य विस्तार की स्थिति में भी पांचाल के स्थानीय राजवंश का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहा ? पांचाल के शासक श्री नन्दी और अच्युत की पहचान यदि प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित आर्यावर्त के शासकों से की जाय तो यह मानना होगा कि पांचाल का स्वतन्त्र राज्य गुप्तों के शासनारम्भ तक बना रहा। अभी तक प्राप्त साक्ष्यों के समवेत अध्ययन के आधार पर यह कहा जाना ही उचित लगता है कि पुष्यमित्र शुंग के बाद ही पंचाल शासकों का स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ। कनिष्क के समय में पंचाल प्रदेश में कुषाण शक्ति का विस्तार हुआ और सम्भवतः पंचाल के मित्रवंशी राजाओं का अन्त हो गया। किन्तु कुषाण राजवंश के दौर्बल्य काल में पंचाल क्षेत्र में पुनः स्थानीय राजवंश प्रभावशाली हो गए। इनकी पूर्ण स्वतन्त्रता का विनाश गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के उत्तरभारतीय अभियान के बाद ही हुआ।

पंचाल मुद्राओं से अभिज्ञापित शासकों का काल क्रम निर्धारण का कोई ठोस आधार नहीं है। कहीं-कहीं कुछ ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं जो कतिपय शासकों के क्रम निर्धारण में सहायक हैं। उदाहरणार्थ वंगपाल की कतिपय मुद्राएँ दामगुप्त द्वारा पुनर्मुद्रित की गयी हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि दामगुप्त वंगपाल के बाद शासक हुआ। इसी प्रकार लिपि के तुलनात्मक विवेचन से भी कतिपय शासकों के क्रमनिर्धारण का प्रयत्न किया गया है। उल्लेखनीय है कि रुद्रघोष की मुद्रा की लिपि भद्रघोष से पूर्व की प्रतीत होती है। इसी प्रकार वसुसेन के मुद्रा की लिपि द्वितीय श. ई. पू. के अन्त अथवा प्रथम शताब्दी ई. पू. के आरम्भ की लगती है। किन्तु उपरोक्त आधार ऐसे पुष्ट नहीं हैं कि उनके आधार पर यह तय किया जा सके कि किस शासक के बाद कौन सा शासक हुआ। मित्र नामान्त शासकों के क्रम का निर्धारण तो अभी तक किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सका है।

5. निष्कर्ष

मुद्रा शास्त्र के अध्ययन का मुख्य कारण वस्तुओं के आदान-प्रदान के साथ-साथ कर वसूली का सही साधन का होना ही मुद्रा के प्रचलन के मुद्दे बनाये गए । इनके निर्माण के लिए राजवंशों ने अपनी इच्छानुकूल आहत और अनाहत सिक्कों का निर्माण कराया ।[5] सिक्का के कलाओं के विश्लेष्णात्मक अध्ययन हमारे देश कि तरक्की और विकास से पर्दा उठाती हैं | देश में सांस्कृतिक विकास के कारण, धर्म का विस्तारण एवं उनके प्रसार का अध्ययन किये | विभिन्न राजवंशों के सिक्कों के निर्माण के कारण और कर वसूली से लेकर व्यापारिक कार्य के बारे में पता चला | उत्तर पूर्वी राजवंशों के आर्थिक स्थिति एवं उनके क्षेत्र में मानव कल्याण के तहत मुद्राओं कि भूमिका अति महत्वपूर्ण रही |

सन्दर्भ :

1. एलन, कैट्लोग ऑफ़ क्वायंस ऑफ़ एन्शिएन्त इंडिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, 1954
2. जे. एन. एस. आई. 24, वी. पी. भट्ट, पांचाल सिक्के, पृष्ठ 149, प्रोफे. के. डी. वाजपेयी, न्यू पांचाल क्वायंस एंड दी प्रोब्लेम्स ऑफ़ पांचाल क्रोनोलोजी, पृष्ठ 9, 2002
3. दर्भ, एम्. बी. एल.- जे. एन. एस. आई., भाग-3 , 1999
4. घोष, अजित, जे. एन. एस. आई. 45
5. प्रसाद, ओमप्रकाश, प्राचीन भारत, मोती लाल बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 97, 1986